ब्रह्मचर्य

परम पूज्य आगमज्ञाता साहित्याचार्य मुनिराज
श्री देवेन्द्र विजयजी
महाराज के शिष्य मुनिराज
नरेन्द्र विजयजी 'नवल'

विश्व में दो प्रकार की विचारधाराएँ प्रचलित हैं- भौतिक आवआध्यात्मिक। मार्ग भी दो हैं - प्रेयस् और श्रेयस् । पुद्गल, शरीर, इन्द्रिय-विषयभोग पोषण का मार्ग प्रेयस् है, जबकि आत्मकल्याण के लिए त्याग-वैराग्य का मार्ग श्रेयस् हैं। एक भोगप्रधान है तो दूसरा त्याग-प्रधान है। एक आत्मा का पतन करने वाला है तो दूसरा उत्थान। इन दोनों को भलीभाँति समझकर आत्मार्थी संयम का मार्ग अपनाते हैं, जबकि भोगलोलुप विषयकषाय के दलदल में फँसकर संसार-समुद्र में गोते खाते रहते हैं।

ब्रह्मचर्य शब्द 'ब्रह्म+चर्' से बना है। ब्रह्म का अर्थ है आत्मा और चर् का अर्थ है चलना, रमण करना। अतः ब्रह्मचर्य का अर्थ है आत्मा में रमण करना। श्रेयोमार्गी ही आत्मा में रमण कर सकता है कहा भी गया है-

शरीर है तो प्राण है।
शील है तो शान है।।
'नवल' आत्मा से बात करो-
विनय है तो वरदान है।।

यदि ब्रह्मचर्य का पालन करना है तो बादाम, काजू खाना छोड़ना पड़ेगा, उसके स्थान पर त्याग के मेवे खाने पड़ेंगे-

मेवे खाओ त्याग के, जो चाहो आराम।
इन भोगों में क्या रखा, नकली आम बादाम।।

जैन-धर्म शुद्ध सनातन होने से संयममार्ग की विशेष प्रेरणा देता है। किन्तु वह मात्र निवृत्तिप्रधान ही नहीं, अपितु उसमें प्रवृत्ति को भी स्थान है, किन्तु किससे निवृत्त हों और किसमें प्रवृत्ति करें, इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

एगे औनियत्तिणं एगे ओ पवत्तेणं।
असंजमे विवत्ति च, संजमे य पवत्तेणं।।

अर्थात् असंयम से निवृत्ति करें और संयम में प्रवृत्ति करें। संसार में सभी धर्मों का सार संयम है, सत्य है और सभी उत्तम धर्मों का समावेश इसमें हो जाता है। देवता भी उसे नमस्कार करते हैं, जो संयम धर्म का पालन करता है। स्वयं भगवान् ने कहा है कि अहिंसा, तप और संयम रूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है और देवता भी उसे नमस्कार करते हैं जो इस धर्म का पालन करते हैं। समस्त ज्ञान का भी सार यही है। कहा गया है-

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा संयम चेव, एयावंत वियाणिया।।

ज्ञानी के ज्ञान सीखने का सार यही है कि वह किसी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसा का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है। यही विज्ञान है।

ब्रह्मचर्य और संयम पर्यायवाची शब्द हैं। जो ब्रह्मचर्य का पालन करेगा वही संयम से रह सकेगा। जो संयम पालन करेगा वही आत्मा में रमण कर सकेगा। संयम का अर्थ है, सं+यम सं = अच्छी तरह से और यम अर्थात् मन, वचन, काया के योगों पर नियंत्रण। अर्थात् समतापूर्वक यम में प्रवृत्त होना। जाग्रत साधक को ही मुनि कहा जाता है। पाप-प्रवेश का कारण ही अजागृति है, असावधानी है। वृहत्कल्पभाष्य में कहा गया है-

'जागरण णरा णिच्चं।'
जो सोवत है वह खोवत है।
जो जागत है वह पावत है।।

जागृत साधक को ही मुनि कहते हैं। आचारांग में भी उल्लेख है-

"सुत्ता अमुणि, मुणिणो सया जागरंति।"

जो सोते हैं वे अमुनि हैं, मुनि जो सदैव जाग्रत ही रहते हैं। असंयमी पापबुद्धि प्राणी का सोते रहना ही अच्छा है। अपने तन, मन इंद्रियों और कामनाओं पर विजय प्राप्त करना ही संयम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। यह तभी संभव है, जब संयमी सजग रहे, एक कवि ने क्या ही सुंदर कहा है-

काँटे हों या फूल, फर्क क्या पड़ता है बोलो।
कुटिया हो या महल, आँख भीतर की खोलो।।
माटी हो या स्वर्ण, जागना तो भीतर है।
जो भीतर से जगा, कौन उससे बढ़कर है।।

आपको जैसा सर्प का भय है, वैसा पाप का भय है क्या? घर में सर्प कुंडली मार कर बैठा हो तो नींद आयेगी क्या?

कभी नहीं। दिमाग में भय का भूत सवार रहेगा। इसी प्रकार अपने अन्तर्कक्ष में विविध पाप रूपी सर्प कुंडली मारकर बैठे हैं। उन्हें हटाने का कभी विचार भी आता है क्या? जैसे सर्प से डरकर जागते रहते हैं वैसे ही पाप से डर कर अंदर से जाग्रत रहेंगे तो आत्मा में स्वस्थता, शांति और निश्चिन्तता आयेगी।

मोटर-ड्रायवर को मोटर चलाने का लायसेंस तभी मिलता है, जब वह जाग्रत, सावधान और ठीक ढंग से गाड़ी चलाने की परीक्षा दे देता है। ड्रायवर को आगे, पीछे दायें, बायें सब तरफ से देखना होता है। ऐसे ही हमने यदि अपने जीवन की गाड़ी को पाप की दुर्घटना से क्षतिग्रस्त कर दिया तो मोटर-चालक की भाँति अपना ही मनुष्य-जीवन का लायसेंस छीन लिया जायेगा। फिर निकट भविष्य में मोक्ष दिलाने वाला मनुष्य - भव मिलना कठिन हो जायेगा।

अन्तर्जागरण के अभाव में दुष्प्रवृत्ति हो जाती है। भगवान् महावीर अपने पूर्व भव में त्रिपृष्ठ वासुदेव थे। उत्तम कुल था, वासुदेव का पद था, पर पद का अहंकार और राजसत्ता का मद उन्माद में ले गया। वे कर्णप्रिय संगीत के रसिक बने। शय्या पालक को आज्ञा दी कि जब मुझे नींद आ जाये तो संगीत बंद करवा देना। पर शय्यापालक स्वयं संगीत में इतना बेभान हो गया कि उसे पता ही न रहा कि महाराज कब सो गये हैं। सूर्योदय तक संगीत चलता रहा। जब महाराज जागे तो शय्यापालक से पूछा कि संगीत बंद क्यों नहीं करवाया? उसने निवेदन किया कि वह संगीत में इतना बेभान हो गया था कि उसे महाराज के निद्राधीन हो जाने का ध्यान ही न रहा।

महाराज को इतना क्रोध आया कि शय्यापालक के कानों में उबलता हुआ शीशा डलवा दिया। उसी कर्म के विपाक स्वरूप ग्वाले ने महावीर के कानों में कीलें मारी थीं। कर्म किसी को हीं छोड़ता, चाहे वह तीर्थंकर ही क्यों न हो। कर्म को कोई शर्म नहीं है।

आप लोग व्यावहारिक बातों में तो जाग्रत रहते है, किन्तु धर्म के विषय में अजाग्रत रहते हैं। घी खरीदते हैं, तो सूँघ कर, परीक्षा करके लेते हैं। एक घड़ा खरीदते हैं तो उसे बजाकर देख लेते हैं, कहीं फूटा न हो। कभी चखकर, कभी सूँघकर, कभी बजाकर माल लेते हैं, किन्तु अपने जीवन में कहीं गुण के बदले अवगुण तो गुण का रूप लेकर प्रवेश नहीं कर रहे हैं। इस बात का विचार नहीं करते। आजकल बाहर का प्रकाश बढ़ा है। अंदर का विचार-प्रकाश मंद हो रहा है। भरतजी की भाँति जागृति करनी चाहिये। उन्होंने तो वृद्ध श्रावकों को नियुक्त कर दिया था कि अन्तर्जागरण का संदेश देते रहें।

तत्त्वार्थसूत्र में कहा गया है, 'कषाय-योग-निग्रहः संयमः।' अर्थात्, कषाय और मन, वचन, काया के योगों का निग्रह करना संयम है। जिस प्रमाण में निग्रह हो उसी प्रमाण में संयम है। गृहस्थ का निग्रह कम हो जाता है अतः वह अल्पसंयमी है, जो-पूर्ण निग्रह कर लेते हैं, वे अनुत्तर संयमी हैं। धवला टीका में कहा गया है- संयमनं संयमः।' अर्थात् उपयोग को पर-पदार्थों से हटाकर आत्मसम्मुख करना, अपने में सीमित करना संयम है। उपयोग में स्वसम्मुखता-स्वलीनता ही संयम है। सम्यक्ज्ञान के आधार से स्वयं का स्वयं पर अनुशासन करना संयम है।

'आत्मनं प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। ' जो स्वयं की आत्मा के प्रतिकूल हो ऐसा व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना चाहिये। अंग्रेजी में भी कहावत है-

Do unto others, as you would have others do unto you.

अर्थात् आप जैसा व्यवहार अन्य से चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार स्वयं भी अन्य के साथ करें।

संयम दो प्रकार का है- इन्द्रियसंयम और मनसंयम। पाँचों इंद्रियों को विशेषकर स्पर्श इंद्रिय को नियंत्रण में रखना, उन्हें विषयों में न जाने देना इंद्रियसंयम है। किसी ने कहा है-

इंद्रियों के न घोड़े, विषयों में अड़ें।
जो अड़ें भी तो संयम के कोड़े पड़ें।।
तन के रथ को सुपथ पर चलाते रहें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध अरिहंत मन में रमाते चलें।।

संयत इंद्रियाँ जीवन में सुखशांति और असंयत इंद्रियाँ अशांति का सृजन करती हैं। स्वामी शंकराचार्य ने तो इंद्रियों को चोर से बढ़कर कहा हैं। चोर जिस घर में रहता है, उसमें चोरी नहीं करता। किन्तु ये इंद्रियाँ तो आत्मा के आश्रित रहकर भी आत्मा को ही धोखा देती है और सुख के स्थान पर उसे दुःखों में ला पटकती हैं। अतः इंद्रियों को सदैव संयमित रखना चाहिये।

मन का संयम बड़ा दुष्कर है, क्योंकि मन बड़ा चंचल है। दस चंचल इस प्रकार हैं-

मनो मधुकरो मेघो, मानिनी मदनो मरुत्।
मा मदो मर्कटो मत्स्यो, मकारा दश चंचलाः।।

योगी आनंदघनजी ने भी मन के विषय में कहा है-

कुन्थु जिन। मनड़ो किम ही न बाजे।
ज्यों-ज्यों जतन करीने राखुं, त्यों-त्यों अधिको भाजे।।
रजनी बासर बसती उजड़, गयन पयाले जाय।
साँप खायने मुखड़ो, थोथो, ए उखाणो न्याय।।
मैं जाणु ए लिंग नपुसंक, सकल मरद ने ठेले।
धीजी बातां समरथ के नर, एह ने कोई न ठेले।।

अर्थात हे!, कुन्थुनाथ प्रभो! मन वश में नही होता है। जितना यत्न करता हूँ उतना ही अधिक भागता है यह रात-दिन बस्ती, उजाड़, आकाश, पाताल सर्वत्र जाता है। सर्प खाता है तो भी उसका मुँह खाली ही रहता है। वैसे ही यह मन है। मैं जानता हूँ कि मन नपुंसक है, फिर भी यह सभी पुरुषों को हराने वाला है। अन्य बातों में पुरुष समर्थ होते हैं, पर इसको कोई पराजित नहीं कर सकता।

किसी तांत्रिक ने एक भूत को वश में कर लिया। वह भूत निरंतर काम चाहता था। यदि उसे काम न बताये तो उस तंत्रवादी पर आक्रमण कर सकता था। उसे जो भी काम बताया जाता वह क्षण भर में पूरा कर देता। तब उसने भूत से एक लंबा बाँस गाड़ने को कहा। फिर भूत से कहा कि जब तक दूसरी आज्ञा न दूँ तब तक इसी पर चढ़ो और उतरो। हमारा मन भी भूत है। उसे निरंतर कुछ काम चाहिये। उसे खाली रखोगो तो वह शैतान हो जायेगा। उसे सदैव ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय में लगाये रखें।

चम्पानगर में एक जिनदास श्रावक था। वह घोड़े पर पौषधशाला जाता, प्रवचन के बाद घर आता, फिर दुकान जाता और शाम को घर लौट आता। घोड़ा इतना सध गया था कि पहली एड़ लगाते ही पौषधशाला, दूसरी में घर, तीसरी में दुकान और चौथी में वापस घर आ जाता। एक बार रात में चोर ने घोड़ा चुराने के लिए खूँटे से खोलकर उस पर सवार होकर एड़ लगाई तो वह पौषधशाला और दूसरी एड़ लगाई तो घर आ गया। फिर एड़ लगायी तो दुकान चला गया। चौथी एड़ में घर आ गया। चोर ने बहुत प्रयत्न किया पर घोड़ा तो पौषधशाला, दुकान और घर के ही चक्कर काटता रहा। आखिर घोड़े को छोड़कर चोर को भागना पड़ा। हमारा मन भी घोड़ा है। इसे इतना साध लें कि वह कुसंगति में जाये नहीं। मन को वश में करने से सब वश में हो जाते हैं। कहा भी गया है-

भाषा तो संयत भली, संयत भला शरीर।
जो मन को वश में करे, वही संयमी वीर।।

संयम के चार भेद हैं- मनसंयम, वचनसंयम, कायसंयम और उपकरणसंयम। मनसंयम बता चुके हैं।

वचनसंयम का भी बड़ा महत्त्व है। जीभ एक है पर इसके काम तीन हैं। बोलना, खाना तथा स्पर्श करना। कहीं इसका दुरुपयोग न हो इसलिए इसे ३२ दाँतों के परकोटे में बंद करके रखा गया है फिर भी जीभ कहती है-

तुम बत्तीस अकेली मैं, तुम में आऊँ-जाऊँ मैं।
एक बात जो ऐसी कह दूँ, बत्तीसी तुड़वाऊँ मैं।।

तीन इंच की जीभ छह फुट के आदमी को मरवाने की ताकत रखती है। द्रौपदी के एक वाक्य ने महाभारत करवा दिया था। अतः वाणी पर संयम रखना अत्यावश्यक है। कहावत है- 'बोलना न सीखा तो सारा सीखा गया धूल में' कैसे बोलना चाहिये? इसका उत्तर ज्ञानियों ने यों दिया है-

'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।'

अर्थात् सत्य बोले, प्रिय बोले, किन्तु जो सत्य होकर भी अप्रिय है, उसे न बोले। श्रावक को वाणी के आठ गुण ध्यान में रखने चाहये।

अल्प आवश्यक मीठा चतुरा, मयनकारी, भाषा बोले।
श्रावक सूत्र सिद्धांत न्याय से, सर्वहितैषी भाषा बोले।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' के अनुसार शरीर धर्म-साधन का महत्त्वपूर्ण निमित्त है। संयम से शरीर नीरोग रहता है। डाक्टरों का मत है कि अधिक खाने से और अधिक विषय-भोग भोगने से अधिक लोग मरते हैं, बीमारी से कम मरते हैं। कामभोग ही अनेक बीमारियों का घर है। प्रायः देखा जाता है कि परस्त्रीगामी और वेश्यागामी को जननेन्द्रिय संबंधी रोग लग जाते हैं। शरीर अशक्त हो जाता है, जिससे वह रोगों का अवरोध नहीं कर पाता।

ब्रह्मचर्य-पालन के लिए सात्विक अल्प आहार आवश्यक है। भगवान् बुद्ध ने भी कहा है कि 'एक बार खाने वाला महात्मा, दो बार खाने वाला बुद्धिमान और दिन भर खाने वाला पशु है।' ब्रह्मचारी का आहार कैसा होना चाहिये इस विषय में ओघनिर्युक्ति में उल्लेख है-

हियाहारी मियाहारी, अप्पाहारी य जे नरा।
न ते विज्जाभिगच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छंगा।।

जो हित मित और अल्प आहार करनेवाले हैं, उन्हें डाक्टर के पास नहीं जाना पड़ता। संयमी शरीर से भी पुण्य कमाता है और निर्जरा का भी उपार्जन करता है। तुलसीदासजी ने भी कहा है-

तुलसी काया खेत है, मनसा भया किसान।
पुण्य पाप दोउ बीज है, बुवै सो लुणे निदान।।

यह शरीर खेत है और मन किसान है, इसमें ब्रह्मचर्य, संमय या अब्रहम का जैसा पुण्य-पाप का बीज बोओगो वैसा ही फल मिलेगा। संयम-साधन की वस्तुओं कटासन, चारवला, माला आदि का संयम रखें और उन पर ममत्व न रखें इसे उपकरण-संयम कहते हैं।

संयम-पालकों की दृष्टि से भी संयम के चार भेद हैं। मोम जैसा, लाख जैसा, लकड़ी जैसा और मिट्टी के गोले जैसा। उत्तम संयमी मिट्टी के गोले के समान संयम में दृढ़ रहता है। कांधला की एक घटना है। एक मुनि विहार करते हुए सूर्यास्त के समय वहाँ पहुँचे। एक हलवाई दुकान बंद करके जा रहा था। मुनि ने उसे छप्पर के नीचे रात में रहने के लिए पूछा। हलवाई ने कहा कि मैं घर से वापस आकर आज्ञा दूँगा। मुनि ने कहा- कोई बात नहीं आप घर होकर आ जायें तब तक मैं यहीं खड़ा हूँ। हलवाई घर जाकर भूल गया और मुनि रात भर वहीं खड़े रहे। प्रातः मुनि को वहाँ खड़ा देखकर हलवाई मुनि के चरणों में गिर पड़ा। मुनि की संयम में दृढ़ता से कांधला जैनियों में प्रसिद्ध हो गया।

निर्ग्रन्थों की अपेक्षा से संयम के पाँच भेद हैं। जो मूलगुण और उत्तरगुण में परिपूर्ण न होने पर भी वीतराग-प्रणीत आगम से कभी अस्थिर नहीं होते, उन्हें पुलाक संयमी कहते है। जो शरीर की विभूषा करे, सिद्धि यश कीर्ति चाहे, सुखाकांक्षी हो और अतिचार दोषों से युक्त हो वह बकुश संयमी होता है। इंद्रियों व मंद कषाय के वश में होकर जो उत्तरगुण में दोष लगाये, विषयभोग में रुचि रखे वह कुशील संयमी, जिसके राग -द्वेष इतने मंद हों कि श्रेणी चढ़ते अन्तर्मुहूर्त में केवली होने वाला हो, विषयों से सर्वथा मुक्त और पूर्ण जाग्रत हो वह निर्ग्रन्थ संयमी और जो-

जाणिए सव्वहि जीव जग जागा,
सव्वहि विषय विलास विरागा।

जो सर्व जीवों की सर्व पर्यायों को जानते हों, जो सर्व विषय-विलास से मुक्त हो चुके हों, वे सर्वज्ञ स्नातक संयमी कहलाते हैं।

मार्ग आदि देखकर प्रवृत्ति करने को प्रेक्ष्य संयम कहते हैं। अशुभ को रोककर शुभ में प्रवृत्ति करने को उपेक्ष्य संयम कहते हैं। संयम में सहायक वस्त्र, पात्र आदि के अतिरिक्त जो अन्य सबका त्याग करे, उसे असहाय संयम कहते हैं। मार्ग आदि को सविधि पूज कर काम में ले उसे प्रमृज्य संयम कहते हैं।

हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पाँचों अस्त्रवों का त्याग, पाँच इंद्रियों पर विजय, चार कषायों का त्याग और तीनों योगों का संयम (मन, वचन काया का) यों संगम के कुल सत्रह भेद होते है।

निर्दोष संयम पालने के लिए कछुए का दृष्टान्त बहुत ही उपयोगी है। उसे जब भी कुछ खतरा लगता है तब वह तुरन्त अपने सभी अंगों को संकुचित कर खोल में छिपा लेता है, खतरा टल जाने पर वापस बाहर निकाल लेता है। इसी तरह साधक को भी जब-जब आवश्यक हो, तब-तब इंद्रियों और मन को गुप्ति रूपी खोल में गोपित कर लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयम का क्या फल है, इसके उत्तर में उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है-

'संजमेण अणण्हयत्तं जणयइ।'

संयम से आस्रव के पाप का निवारण होता है। संयम का पालन कितना कठिन है। इस संबंध में भी उतराध्ययन में आया है-

जहा अग्गिसिहादित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा।
तहा दुक्कर करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं।।

अर्थात् जैसे प्रदीप्त अग्निशिखा को पीना कठिन है, वैसे ही युवावस्था में संयम का पालन कठिन है। और भी कहा गया है-

बालुवा कवले चेव, णिरस्साए उ संजमे।
असि धारा गमण चेव, दुक्कर चरिउं तवो।।

अर्थात्-

बालू रेत सम संयम होत है स्वादहीन।
समझो इस तलवार धार, चलना होत अति कठिन।।

संयम जीवन रूपी गाड़ी का ब्रेक है। जैसे लाखों रुपये के मूल्य वाली गाड़ी भी ब्रेक के बिना बैठने योग्य नहीं होती, वैसे ही जीवन भी संयम के बिना बेकार है।

अँग्रेजी में भी कहावत है -

``If Money is lost nothing is lost, if health is lost something is lost, but if character is lost everything is lost.'

अर्थात् धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया, किन्तु यदि चरित्र गया तो सब कुछ गया।

जो भी महापुरुष होते हैं वे सब संयमी और त्यागी होते हैं। उनका बाह्य जीवन कैसा भी क्यों न हो, पर वे अन्तरंग में संयमी होते हैं। संयम से आस्रव का समुद्र भी बूँद जितना कम हो जाता है। त्याग-प्रत्याख्यान के बिना विश्व के समस्त जीव और अजीव पदार्थों की क्रिया के पाप-आस्रव से सभी अव्रती जीव निरन्तर भारी होते रहते हैं। जो सर्व संयमी (साधु) होते हैं। वे सर्वथा पाप आस्रव से निवृत्त हो जाते हैं, किन्तु जो गृहस्थ श्रावक आंशिक संयमी होते हैं उनकी भी २० प्रतिशत पापक्रिया में मात्र १.२५ प्रतिशत पापक्रिया शेष रह जाती है।

वह इस प्रकार कि पहला अहिंसा अणुव्रत लेने से निरपराध त्रस जीवों की हिंसा का त्याग हो जाता है, जिससे मात्र स्थावर जीवों की १० प्रतिशत हिंसा का पाप ही शेष रह जाता है। फिर छठा दिशिव्रत ग्रहण करने से उससे भी आधी मात्र ५ प्रतिशत क्रिया रह जाती है। सातवाँ भोगोपभोग व्रत ग्रहण करने से पाँच की भी आधी २.५ प्रतिशत क्रिया रह जाती है। अन्त में आठवाँ अनर्थदण्ड व्रत ग्रहण करने से उससे भी आधी १.२५ प्रतिशत क्रिया का पापास्रव शेष रह जाता है। यों आंशिक व्रतग्रहण से भी सहज में ही महापाप से निवृत्ति हो जाती है।

श्रमणसूत्र में कहा गया है कि बिना संयम के तप भी निरर्थक है-

नाणं चरित्तहीनं, लिंगगहणं च दंसणविहीणं।
संजमहीणं च तवं, जो चरई निरत्थ य तस्स।।

अर्थात् बिना चारित्र के ज्ञान, बिना सम्यग्दर्शन के साधु-वेष और बिना संयम के तप व्यर्थ है। संयम का महत्त्व तप से अधिक है। तप और संयम में संयम ज्येष्ठ है। बिना संयम का तप ताप होता है। शास्त्रकार कहते हैं कि तप वही श्रेष्ठ है, जो अहिंसा और संयम से युक्त हो।

संयम का फल दान से भी अधिक है। महादानी भी एक आंशिक संयमी के समकक्ष नहीं हो सकता। शास्त्रकार उत्तराध्ययन सूत्र में कहते हैं-

जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवंदए।
तस्सावि संजमो सेओ, अदित्तस्सऽकिंचण।।

अर्थात्-

दस लाख गाय जो मास-मास, देता संयम से हो सूना।
दे दान नहीं कुछ भी पर है, संयम का मूल्य सदा दूना।

दस लाख गायों का दान प्रतिमाह देने वाला भी एक संयमी साधु से, जो कुछ भी नहीं देता, श्रेष्ठ क्यों है? क्योंकि दानी तो कुछ जीवों का अभयदान कुछ समय के लिए ही दे पाता है, वे भी कालान्तर में कसाई के पास पहुँच सकते हैं पर साधु तो सर्व जीवों को सदैव के लिए अभयदान देता है।

संयम के लिए तो देवता और देवेन्द्र भी पश्चात्ताप करते हैं कि उन्होंने मनुष्यभव पाकर भी विशेष श्रुत नहीं पढ़ा, अधिक संयम नहीं पाला और विशुद्ध चारित्र का स्पर्श नहीं किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावपूर्वक संयम की सम्यग्, आराधना से जीव सर्वार्थसिद्धि से भी अधिक अनुत्तर सुख को प्राप्त कर सकता है। संसार में जो जितना संयमी है। वह उतना ही सच्चे सुख को प्राप्त करता है। संयमपालन से ही सुख में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती है। भगवतीसूत्र के आधार से 'ज्ञानसंसार' ग्रंथ में कहा गया है कि एक माह के संयम वाला वाणव्यन्तर के सुख में, दो माह के संयम वाला भवनपति के सुख में, तीन माह के संयम वाला असुरकुमार के सुख में, चार माह का संयमी ग्रह-नक्षत्रों के देवों के सुख में, पाँच माह वाला सूर्य-चंद्र के देवों के सुख में, छह माह वाला संयमी पहले-दूसरे देवलोक के सुख में यों उत्तरोत्तर बढ़ते हुए बारह माह का संयमी अनुत्तर देवों के सुखों का भी उल्लंघन कर देता है। एक वर्ष से अधिक का संयमी सदेह मुक्ति के सुखों का अनुभव करता है। कहा भी गया है-

जीवन का क्या है पता, कब तक है कब जाय।
मुक्तिनगर पाथेय हित, संयम सुखद उपाय।।
बिन संयम मिलता नहीं, कभी मोक्ष का द्वार।
संयम बिन कोई जतन, करे न बेड़ा पार।।

इस संबंध में एक पौराणिक कथा है। एक बार एक महात्मा के चार भक्तों ने अपने-अपने दुःख दूर करने के लिए चार अलग-अलग वरदान माँगे। पहले ने धन, दूसरे ने रूपवती स्त्री, तीसरे ने पुत्र और चौथे ने यश-कीर्ति का वरदान माँगा। योगी ने चारों को उनकी इच्छानुसार वर दे दिया। कुछ वर्षों बाद चारों ही भक्त वापस महात्मा से मिले, तब महात्मा ने पूछा कि अब तो वे सुखी हैं? इस पर पहले ने कहा कि धन तो मिल गया पर उसकी रक्षा में रात-दिन दुःखी रहता हूँ। दूसरे ने कहा कि रूपवती स्त्री तो मिल गयी और उसके भोग से ऐसा रोग लग गया है कि जीना मुश्किल हो गया है। तीसरे ने कहा कि पुत्र तो अनेक हो गये हैं पर आज्ञाकारी एक भी नहीं। चौथे ने कहा कि यशकीर्ति तो खूब फैल रही है पर ईर्ष्या की अग्नि से जल रहा हूँ। तब महात्मा ने कहा कि सुख बाह्य पदार्थों में नहीं है, सुख तो आत्मा में ही है, जो संयम-पालन से प्राप्त होता है। इसलिए कहा गया है-

नवि सुही देवता देवलोए, नवि सुही पुढवी पइराया।
नवि सुही सेठ सेनावइये, एगंत सुही साहु वीयरागी।।

न तो देवता देवलोक में सुखी हैं, न पृथ्वीपति राजा सुखी हैं और न सेठ-सेनापति सुखी हैं। मात्र वीतरागी संयमी साधु ही सुखी हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सभी व्रतों का पालन संयम से ही संभव है। संयम नहीं होने से खाने-पीने, चलने-फिरने में हिंसा हो सकती है। संयम नहीं होने से इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए झूठ बोला जा सकता है। संयम नहीं होने से अधिक धन कमाने के लोभ में चोरी का माल भी खरीदा जा सकता है। संयम नहीं होने से परस्त्री से भोग भोगने की इच्छा भी जाग्रत हो सकती है और संयम नहीं होने से इच्छा पर कोई अंकुश नहीं रहेगा जिससे अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह होना असंभव है। अतः धर्मपालन के लिए पहली शर्त संयम है। शरीर के पोषण का विधान भी संयम के लिए ही है।

संयम हेतु देहो, धारिज्जई सो कओ उ तद्भावे।
संजममाइनिमित्तं, देह परिपालणट्ठ।।

संयम-पालन के लिए ही शरीर धारण करना और उसका पोषण करना चाहिए, क्योंकि बिना शरीर के संयम का पालन नहीं हो सकता।

ज्ञानी कहते हैं कि संयम से पापी का भी उद्धार हो जाता है।

दीक्षा-संयम के प्रभाव से, पापी पावन बनता है।
सेवक जग स्वामी बन जाता, मूरख ज्ञानी बनता है।

विश्व में जितनी भी सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, खाद्य संबंधी, स्वास्थ्य संबंधी तथा प्रदूषण संबंधी समस्याएँ है उन सबका सरल व उत्तम समाधान संयमवृत्ति को अपनाना है। ज्यों-ज्यों असंयम बढ़ रहा है, त्यों-त्यों जनसंख्या बढ़ती जा रही है और विश्व में रोग, भुखमरी, प्रदूषण एवं युद्ध आदि बढ़ रहे है। जनसंख्या को सीमित करने के लिए अप्राकृतिक साधनों के उपयोग के बजाय ब्रह्मचर्य का पालन ही सर्वश्रेष्ठ है। महात्मा गाँधी ने भी जनसंख्या पर नियंत्रण के लिए ब्रह्मचर्य पर ही जोर दिया है।

जैन-संस्कृति संयम प्रधान संस्कृति है। लोक का सार भी संयम कहा गया है-

लोगस्सं सारं धम्मो, धस्मं पिय नाण सारियं बिंति।
नाणं संजम- सारं संजमसारं च निव्वाणं।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तव में संयम सुख का, आत्मोत्थान का व कल्याण का शाश्वत मार्ग है, जबकि असंयम दुःख और पतन का मार्ग है। श्रीमद् रामचन्द्र ने तो स्पष्ट कहा है-

देखकर नव यौवना, लेश न विषय निदान।
गिने काठ की पूतली, वह भगवान समान।।

एक बार एक गृहस्थ ने एक ज्ञानी महात्मा से पूछा, 'महात्माजी! मैं संसार के विषय-प्रपंचों में इतना अधिक उलझा हूँ कि मुझे धर्म सुनने का अवसर ही नहीं मिलता। मुझे कोई छोटी सी ऐसी बात बतायें कि जिससे दुःख मिट कर सुख बढ़ता रहे और आत्मा का कल्याण भी हो जाये। तब महात्मा ने बहुत सोचने के बाद उसे यह श्लोक बताया-

आपदा कथितो पंथा, इंद्रियाणामसंयमः।
तज्जयो सम्पदामार्गः, प्रथितः पुरुषोत्तमैः।।

अर्थात् इंद्रियों को वश में करना, सुख का मार्ग तथा उन्हें बिना अंकुश के छोड़ देना दुःख का मार्ग है। अंग्रेजी में भी एक कहावत है कि-

Character is property. A man is known by what he loves friends, places , books, thoughts, good or bad from these his character is told.

अर्थात् संयम ही धन है। मनुष्य कैसे मित्र रखता है? कैसे स्थानों पर जाता है? कैसी पुस्तकें पढ़ता है? कैसे विचार रखता है, अच्छे या बुरे? इन्हीं से उसका चरित्र जाना जा सकता है।

संयम पर एक अनुपम पर याद आ रहा है। उसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

संयम सुखकारी, हो जिन आज्ञानुसार संयम सुखकारी।
सुखकारी, मंगलकारी, धन्य पाले जो नर-नारी।
हो संयम सुखकारी।
कर्म-मैल को शीघ्र हटावे, आत्मा के गुण सब प्रगटावे।
जन्म-मरण का दुःख मिटावे, होवे परम कल्याण।
हो संयम सुखकारी।।१।।

परम औषधि संयम जाणो, तीन लोक का सार पिछाणो।
शुद्ध संयम हिरदे में धारो, अनुपम सुख की खान।
हो संयम सुखकारी।।२।।

काम-कषाय को तजै हुकमाई, निंदा विकथादि छिटकाई।
तप संयम में लीन सदा ही, धन्य तेहनो अवतार।
हो संयम सुखकारी।।३।।

संयम के स्वरूप और माहात्म्य को समझ कर यह ध्यान में रखना चाहिये कि सम्यग्ज्ञानदर्शन हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, जो संयम हमारे बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं से हमारी रक्षा करने वाला हमारा अद्वितीय अंगरक्षक है। जिस प्रकार युद्ध में कवच योद्धा का रक्षक होता है, उसी प्रकार साधक के न सिर्फ बाह्य शत्रुओं के लिए भी अपितु मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद व अशुभ योग आदि महाप्रबल आन्तरिक शत्रुओं से आत्मा की रक्षा करने के लिए संयम उत्तम अमोघ कवच है। जो भी इसे धारण करेगा उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र तपरूपी अनमोल रत्न सुरक्षित रहेंगे। उसकी आत्मा कर्म रूपी प्रबल शत्रुओं को पराजित कर निकट भविष्य में ही मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करेगी।

अनन्त पुण्योदय से तन, मन, वचन और धन रूपी चार उपलब्धियाँ प्राप्त होती है, पर इन चारों के पीछे चार चोर लगे हुए हैं। तन के पीछे व्याधि, रसना के पीछे स्वाद, धन के पीछे उपाधि और मन के पीछे तृष्णा। इन चारों से बचने का एक मात्र उपाय है समाधि। यह समाधि संयम से प्राप्त होती है। सचमुच, संयय ही जीवन का सौंदर्य है, मन का माधुर्य है और धर्म का मंगल प्रवेश-द्वार है, जो इसका पालन करेंगे वे यहाँ भी और परभव में भी सुख प्राप्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org